International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

महाजनपदों के उदय में नगरीकरण, व्यापार और लौह प्रौद्योगिकी की भूमिका

कुमारी नेहा चौहान
शोधार्थी, इतिहास विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

ईसा–पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के मध्य उत्तर भारत में छोटे जनपदीय और कुल–आधारित राजनीतिक संगठनों से बड़े भू–क्षेत्रीय राज्यों अर्थात् महाजनपदों की ओर संक्रमण प्राचीन भारतीय इतिहास की एक निर्णायक प्रक्रिया थी। इस परिवर्तन को केवल राजनीतिक महत्वाकांक्षा अथवा सैन्य संघर्षों के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इसके पीछे उत्पादन, विनिमय, तकनीक और बस्तियों की संरचना में व्यापक परिवर्तन सक्रिय थे। प्रस्तुत शोध–पत्र महाजनपदों के उदय में नगरीकरण, व्यापार और लौह प्रौद्योगिकी की परस्पर संबद्ध भूमिका का विश्लेषण करता है। ईसा–पूर्व छठी शताब्दी के आसपास गंगा घाटी और उत्तर भारत के अन्य भागों में राजगृह, वैशाली, कौशाम्बी, वाराणसी, श्रावस्ती, चम्पा और उज्जयिनी जैसे नगरों का विकास राजनीतिक केंद्रों के साथ–साथ शिल्प, बाजार और विनिमय के केंद्रों के रूप में हुआ। कृषि–अधिशेष तथा विशेषीकृत शिल्प उत्पादन ने इन नगरों को आवश्यक आर्थिक आधार दिया, जबकि लंबी दूरी और क्षेत्रीय व्यापार ने अलग–अलग उत्पादन क्षेत्रों को जोड़कर व्यापारियों और संपन्न गृहपतियों के प्रभाव को बढ़ाया। आहत मुद्राओं का प्रयोग विनिमय की बढ़ती जटिलता का संकेत देता है। लौह उपकरणों ने कृषि, शिल्प और दैनिक उत्पादन को अधिक प्रभावी बनाने में योगदान दिया, किंतु लौह तकनीक को महाजनपदों के उदय का अकेला कारण मानना उचित नहीं है। पुरातात्त्विक अध्ययनों से स्पष्ट है कि लोहे का उपयोग कई क्षेत्रों में राज्य और नगरों के उदय से पहले ही आरम्भ हो चुका था। इसलिए अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि महाजनपदों का उदय लौह तकनीक, बढ़ते कृषि–अधिशेष, बस्ती–विस्तार, नगरीकरण, व्यापारिक नेटवर्क, शिल्प–विशेषीकरण और संसाधनों के राजनीतिक केंद्रीकरण की परस्पर क्रिया का परिणाम था। इन आर्थिक परिवर्तनों ने कर–संग्रह, प्रशासन और बड़े भू–क्षेत्रीय राज्यों की स्थिरता के लिए आवश्यक भौतिक आधार तैयार किया।

प्रमुख शब्दः महाजनपद, द्वितीय नगरीकरण, लौह प्रौद्योगिकी, व्यापार, शिल्प, आहत मुद्राएँ, उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड, कृषि–अधिशेष, नगर, राज्य–निर्माण।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में ईसा–पूर्व छठी शताब्दी को सामान्यतः उस युग के रूप में देखा जाता है जब राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन एक साथ दिखाई देने लगे। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय में उल्लिखित सोलह महाजनपद इस तथ्य को दर्शाते हैं कि पूर्ववर्ती छोटे जनपदों के स्थान पर व्यापक भू–क्षेत्र, बड़ी जनसंख्या और अधिक संगठित संसाधन–व्यवस्था वाले राज्य विकसित हो चुके थे। इस परिवर्तन को समझने के लिए केवल

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

राजाओं, युद्धों और राजवंशों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। रोमिला थापर ने वंश–आधारित सामाजिक संरचना से क्षेत्रीय राज्य की ओर संक्रमण को कृषि उत्पादन, सामाजिक विभेदीकरण, व्यापार और बढ़ते शहरी केंद्रों से संबंधित एक जटिल प्रक्रिया माना है।[1] इसी प्रकार आर. एस. शर्मा ने महाजनपदों के विकास को भोजन–उत्पादक अर्थव्यवस्था के विस्तार, कर देने वाले कृषकों, तकनीकी परिवर्तनों और बढ़ते अधिशेष से जोड़ा है।[2] इस आर्थिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि राज्य का आधार केवल किसी विशेष कुल या जनजाति के सदस्यों पर नहीं रहा, अब निश्चित भू–क्षेत्र, वहाँ रहने वाली कृषक जनसंख्या, उत्पादन और नियमित राजस्व अधिक महत्वपूर्ण होते गए। नगरों ने इस परिवर्तन को गति दी क्योंकि वे प्रशासन, शिल्प और विनिमय के केंद्र बने। व्यापार ने दूर–दराज के उत्पादन क्षेत्रों को जोड़ा और स्थानीय अर्थव्यवस्था से बाहर वस्तुओं के नियमित प्रवाह को प्रोत्साहित किया। लौह तकनीक ने कृषि और शिल्प के लिए नए उपकरण उपलब्ध कराए, यद्यपि इसकी वास्तविक भूमिका को लेकर इतिहासकारों में महत्वपूर्ण मतभेद हैं। इसलिए इस अध्ययन का केंद्रीय प्रश्न यह नहीं है कि इनमें से कौन–सा एक कारक महाजनपदों का कारण बना, बल्कि यह है कि नगरीकरण, व्यापार और लौह तकनीक एक–दूसरे से जुड़कर ऐसी आर्थिक संरचना कैसे निर्मित करते गए जिसमें बड़े क्षेत्रीय राज्यों का संचालन और स्थायित्व संभव हुआ।

जनपद से महाजनपदः आर्थिक आधार में परिवर्तन

'जनपद' शब्द मूलतः किसी 'जन' अर्थात् सामाजिक अथवा जनजातीय समुदाय के स्थापित भू–क्षेत्र की ओर संकेत करता है, लेकिन प्रथम सहस्राब्दी ईसा–पूर्व के मध्य तक राजनीतिक संगठन में महत्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन दिखाई देता है। पहले जिन इकाइयों की एकता वंश, कुल और पारस्परिक रिश्तों पर अधिक आधारित थी, वे धीरे–धीरे निश्चित सीमा, कृषि–भूमि, बस्तियों और कर देने वाली जनसंख्या से संबद्ध राजनीतिक इकाइयों में परिवर्तित हुईं। 'महाजनपद' की अवधारणा इसी व्यापकता की ओर संकेत करती है। इस परिवर्तन के लिए जनसंख्या के अधिक स्थायी रूप से बसने, नियमित कृषि उत्पादन और अधिशेष की आवश्यकता थी, क्योंकि केवल पशुपालन या युद्ध से प्राप्त लूट के आधार पर बड़े क्षेत्रीय राज्यों की स्थायी संस्थाओं को बनाए रखना संभव नहीं था। आर. एस. शर्मा ने बाद के वैदिक समाज से महाजनपदकालीन व्यवस्था की ओर संक्रमण का विश्लेषण करते हुए करदाता कृषक वर्ग और कृषि उत्पादन को राज्य–निर्माण का महत्वपूर्ण भौतिक आधार माना है।[3] रोमिला

[1] थापर, रोमिला. (1990). फ्रॉम लिनिएज टू स्टेटः सोशल फॉर्मेशन्स ऑफ द मिड–फर्स्ट मिलेनियम बी.सी. इन द गंगा वैली. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 69–70.

[2] शर्मा, आर. एस. (1983). मटेरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशन्स इन एंशिएंट इंडिया. मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 157–158.

[3] शर्मा, आर. एस. (1983). मटेरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशन्स इन एंशिएंट इंडिया. मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 160–161.

थापर के अनुसार मध्य गंगा घाटी में कृषक अर्थव्यवस्था की अधिक स्पष्ट स्थापना ने वंश–आधारित संगठन के स्थान पर भू–क्षेत्रीय राज्य के निर्माण के लिए नई परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं।[4] यह परिवर्तन केवल राजनीतिक शब्दावली में नहीं बल्कि बस्ती–पद्धति में भी परिलक्षित होता है। छोटे ग्रामीण अधिवासों के साथ बड़े केंद्र उभरने लगे जहाँ प्रशासन, शिल्प और व्यापारिक गतिविधियाँ केंद्रित थीं। एक महाजनपद को अपने सीमांत क्षेत्रों तक अधिकार बनाए रखने, विभिन्न समुदायों से संसाधन प्राप्त करने और किसी केंद्रीय स्थल पर उन्हें एकत्र करने की आवश्यकता थी। इसीलिए उत्पादन और राजनीतिक संगठन का संबंध अधिक प्रत्यक्ष हुआ। कृषि योग्य क्षेत्र की वृद्धि, ग्रामीण बस्तियों का प्रसार और उनके ऊपर विकसित नगरीय केंद्रों की उपस्थिति ने ऐसी बहु–स्तरीय बस्ती व्यवस्था विकसित की जिसमें गाँव उत्पादन का आधार थे और बड़े नगर संसाधन–संग्रह, पुनर्वितरण तथा राजनीतिक नियंत्रण के केंद्र बन सकते थे।[5]

'द्वितीय नगरीकरण' की अवधारणा

सिंधु सभ्यता के नगरों के पतन के लगभग एक सहस्राब्दी बाद गंगा घाटी तथा उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों में नगरों का पुनः व्यापक विकास दिखाई देता है, जिसे इतिहासलेखन में प्रायः 'द्वितीय नगरीकरण' कहा जाता है। इसका प्रारम्भ सामान्यतः ईसा–पूर्व सातवीं–छठी शताब्दी के आसपास विकसित होने वाली प्रक्रियाओं से जोड़ा जाता है, यद्यपि सभी क्षेत्रों में नगरीकरण एक ही समय अथवा समान गति से नहीं हुआ। जॉर्ज एर्डोसी ने प्रारम्भिक ऐतिहासिक गंगा घाटी की बस्ती–पद्धति के अध्ययन में ईसा–पूर्व छठी से चौथी शताब्दी के बीच बड़े नगरीय केंद्रों तथा उनसे जुड़े छोटे बाजार और ग्रामीण स्थलों की एक स्पष्ट श्रेणीबद्ध संरचना की ओर ध्यान आकर्षित किया है।[6] राजगृह, वैशाली, कौशाम्बी, वाराणसी और श्रावस्ती जैसे स्थल केवल घनी आबादी वाले अधिवास नहीं थे। इनमें से अनेक राजनीतिक राजधानियाँ, प्रशासनिक केंद्र और व्यापारिक नोड भी थे। ए. घोष ने प्रारम्भिक ऐतिहासिक भारतीय नगर की विशेषता इस तथ्य में देखी कि राजनीतिक प्राधिकार और व्यापारी गतिविधियाँ उसके निर्माण और स्थायित्व में संयुक्त भूमिका निभाती थीं।[7] इस प्रकार नगर का विकास ग्रामीण अर्थव्यवस्था से पृथक प्रक्रिया नहीं था। उसके अस्तित्व के लिए आसपास के क्षेत्र से खाद्यान्न, कच्चा माल और श्रम की नियमित आपूर्ति आवश्यक थी। दूसरी ओर नगर शिल्प–सामग्री, बाजार और प्रशासनिक सेवाएँ प्रदान कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था से जुड़ा रहता था। राजनीतिक दृष्टि से

---

[4] थापर, रोमिला. (1990). फ्रॉम लिनिएज टू स्टेट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 86–87.

[5] एर्डोसी, जॉर्ज. (1988). अर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टोरिक इंडिया. बी.ए.आर. इंटरनेशनल सीरीज 430, ऑक्सफोर्ड, पृ. 106–107.

[6] एर्डोसी, जॉर्ज. (1988). अर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टोरिक इंडिया. बी.ए.आर. इंटरनेशनल सीरीज 430, ऑक्सफोर्ड, पृ. 126–127.

[7] घोष, ए. (2006). "द सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इंडिया." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 100–101.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

बड़े नगर कर और वस्तुओं के संकलन, अधिकारियों की उपस्थिति तथा शासन के आदेशों के प्रसार के लिए उपयोगी थे। अतः द्वितीय नगरीकरण को महाजनपदों के उदय का केवल परिणाम नहीं माना जाना चाहिए, यह उनकी बढ़ती राजनीतिक क्षमता का साधन भी बना। नगरों ने बड़ी क्षेत्रीय इकाइयों को अपनी ग्रामीण परिधि से अधिशेष प्राप्त करने और उसे राजनीतिक तथा आर्थिक केंद्रों पर संगठित करने की सुविधा दी।

पुरातात्त्विक साक्ष्यः बस्ती—विस्तार और उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड

महाजनपदकालीन नगरीकरण की व्याख्या में पुरातात्त्विक साक्ष्य विशेष महत्त्व रखते हैं क्योंकि साहित्यिक ग्रंथ प्रायः राजनीतिक या धार्मिक उद्देश्यों से रचित थे और आर्थिक जीवन का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत नहीं करते। ईसा—पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के मध्य उत्तर भारत में उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड (एनबीपीडब्ल्यू) से संबद्ध पुरास्थलों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई देती है। इस विशिष्ट चमकीले मृद्भाण्ड को नगरीकरण का अकेला प्रमाण नहीं माना जा सकता, किंतु इसका प्रसार बड़े और छोटे अधिवासों के विस्तार, शिल्प—विशेषीकरण तथा दूरगामी संपर्कों के व्यापक पुरातात्त्विक संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। रोमिला थापर ने एनबीपीडब्ल्यू कालीन स्थलों में बढ़ते आकार, जनसंख्या—सघनता, जल—निकासी और विकसित बस्ती—पद्धति को नगरीकरण की प्रारम्भिक अवस्था से जोड़ा है।[8] जॉर्ज एर्डोसी के क्षेत्रीय सर्वेक्षणों में भी लगभग 600—350 ईसा—पूर्व के बीच कुछ स्थलों के आकार में उल्लेखनीय वृद्धि तथा छोटे गाँवों से लेकर बड़े दुर्गीकृत केंद्रों तक एक स्पष्ट बस्ती—श्रेणी दिखाई देती है।[9] यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि नगरीकरण का अर्थ केवल एक बड़े नगर का अस्तित्व नहीं, बल्कि उसके आसपास छोटे उत्पादन स्थलों, बाजारों और गाँवों का नेटवर्क विकसित होना है। पुरातात्त्विक स्तरों में लौह वस्तुओं, विशिष्ट मृद्भाण्ड, मनकों, धातु—शिल्प और किलेबंदी के प्रमाण अनेक स्थलों के बहु—कार्यात्मक चरित्र की ओर संकेत करते हैं। विभिन्न स्थलों पर इन विशेषताओं की तिथियाँ समान नहीं हैं, इसलिए महाजनपदकालीन परिवर्तन को एक ही 'शहरी क्रांति' मानना उचित नहीं होगा। फिर भी बस्तियों की संख्या और आकार में वृद्धि यह दर्शाती है कि कृषि उत्पादन की तीव्रता, जनसंख्या और वस्तुओं के स्थानीय तथा क्षेत्रीय विनिमय में पर्याप्त विस्तार हुआ था। ऐसी विस्तृत बस्ती प्रणाली बड़े राज्य के लिए संसाधन और जनसंख्या दोनों का स्थिर आधार प्रदान कर सकती थी।

बस्ती—पदानुक्रम और नगरों के बहुआयामी कार्य

महाजनपदकालीन नगरीकरण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में विभिन्न आकार और कार्य वाले अधिवासों का एक पदानुक्रम विकसित होना था। सभी बस्तियाँ नगर नहीं बनीं और सभी नगर समान प्रकार के कार्य नहीं करते थे। जॉर्ज एर्डोसी ने गंगा घाटी के पुरातात्त्विक

---

[8] थापर, रोमिला. (1990). फ्रॉम लिनिएज टू स्टेट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 96—105.

[9] एर्डोसी, जॉर्ज. (1985). "द ओरिजिन ऑफ सिटीज इन द गैंजीज वैली." जर्नल ऑफ द इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ओरिएंट, खंड 28(1), पृ. 81—84.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

सर्वेक्षणों के आधार पर छोटे कृषि गाँवों, स्थानीय बाजार केंद्रों, शिल्प–उत्पादन स्थलों, बड़े व्यापारिक नगरों और राजधानियों के बीच कार्यात्मक अंतर को रेखांकित किया है।[10] छोटे गाँव मुख्यतः खाद्यान्न और कच्चे माल के उत्पादन का आधार थे, उनसे बड़े केंद्र आसपास के ग्रामीण क्षेत्र में वस्तुओं के विनिमय और संग्रह की भूमिका निभा सकते थे, कुछ बड़े स्थल विशेष शिल्पों तथा बाजारों के केंद्र बने, जबकि राजधानी–नगर इन सभी आर्थिक कार्यों के साथ प्रशासनिक और राजनीतिक कार्य भी निभाते थे। यही बस्ती–व्यवस्था महाजनपदों के निर्माण के लिए अत्यंत उपयोगी थी, क्योंकि किसी बड़े राज्य को प्रत्येक गाँव से प्रत्यक्ष प्रशासनिक संपर्क स्थापित करने के बजाय क्षेत्रीय केंद्रों के माध्यम से संसाधनों को संगठित करना अधिक सरल हो सकता था। शहरी केंद्र में राजकीय अधिकारियों, व्यापारियों और विशेषीकृत शिल्पकारों की उपस्थिति ने ग्रामीण उत्पादन को व्यापक विनिमय नेटवर्क से जोड़ा। नगर का उपभोग भी महत्वपूर्ण था: बड़ी गैर–कृषक आबादी को नियमित खाद्यान्न की आवश्यकता होने से आसपास के कृषकों के लिए बाजार की माँग उत्पन्न हुई। दूसरी ओर शहरी शिल्पकार ग्रामीण क्षेत्रों को धातु उपकरण, वस्त्र, मृद्भाण्ड और अन्य वस्तुएँ उपलब्ध करा सकते थे। इस प्रकार गाँव और नगर परस्पर विरोधी आर्थिक संसार नहीं थे, वे एक ही क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के परस्पर निर्भर अंग बने। शिरीन रत्नागर ने राज्य–निर्माण की पुरातात्त्विक व्याख्या में ऐसे संसाधन नेटवर्क और उनके राजनीतिक नियंत्रण को विशेष महत्व दिया है।[11] बस्ती–पदानुक्रम ने इसलिए राज्य को केवल राजधानी नहीं दी, बल्कि उसके अधीन आर्थिक क्षेत्र को संगठित करने वाली संरचना भी प्रदान की।

व्यापारिक मार्ग और क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं का परस्पर संपर्क

व्यापार का विस्तार महाजनपदों के उदय से संबंधित आर्थिक परिवर्तन का दूसरा प्रमुख पक्ष था। उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों की प्राकृतिक संपदा समान नहीं थी, फलतः धातु, घोड़े, नमक, वस्त्र, हाथीदाँत, सुगंधित पदार्थ और अन्य विशिष्ट वस्तुएँ उत्पादन क्षेत्र से दूर बाजारों तक पहुँचती थीं। गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ पूर्व–पश्चिम दिशा में माल के आवागमन के लिए उपयोगी थीं, जबकि स्थल मार्ग उत्तर–पश्चिम, मध्य भारत और दक्कन से गंगा घाटी को जोड़ते थे। रोमिला थापर ने उत्तरापथ और दक्षिणापथ जैसे विस्तृत मार्गों के साथ क्षेत्रीय बाजारों के संबंध का उल्लेख करते हुए यह दिखाया है कि गंगा घाटी धीरे–धीरे अधिक व्यापक व्यापारिक परिसंचरण से जुड़ रही थी।[12] तक्षशिला की दिशा से आने वाले मार्गों द्वारा घोड़े और उत्तर–पश्चिमी वस्तुएँ पूर्वी बाजारों तक पहुँच सकती थीं, जबकि दक्षिणापथ उज्जयिनी तथा आगे दक्कन की ओर संपर्क स्थापित करता था। नदी और स्थल मार्गों पर

[10] एर्डोसी, जॉर्ज. (1988). अर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टोरिक इंडिया. बी.ए.आर. इंटरनेशनल सीरीज 430, ऑक्सफोर्ड, पृ. 125–127.

[11] रत्नागर, शिरीन. (2006). "आर्कियोलॉजी एंड द स्टेट." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 179–180.

[12] थापर, रोमिला. (1990). फ्रॉम लिनिएज टू स्टेट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 111–113.

स्थित नगरों की समृद्धि इस बात से जुड़ी थी कि वे वस्तुओं के उत्पादन, संकलन और पुनर्वितरण के नोड बन सकते थे। व्यापार के विस्तार ने महाजनपदों को दो स्तरों पर प्रभावित किया। पहला, इससे कृषि से बाहर आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ और व्यापारी तथा शिल्पकार जैसे नए संपन्न समूह अधिक प्रमुख हुए। दूसरा, व्यापारिक गतिविधियों से जुड़ी शुल्क और कर जैसी आय राजनीतिक सत्ता के लिए अतिरिक्त संसाधन प्रदान कर सकती थी। डी. डी. कोसाम्बी ने गंगा घाटी में विस्तृत राजनीतिक इकाइयों और सुरक्षित व्यापारिक मार्गों के बीच पारस्परिक संबंध की ओर ध्यान आकर्षित किया था।[13] व्यापारियों को स्थिर मार्ग और बाजार की आवश्यकता थी, जबकि राज्य को सक्रिय व्यापार से अतिरिक्त राजस्व तथा रणनीतिक संपर्क प्राप्त हो सकता था। इस प्रकार व्यापार राज्य से बाहर चलने वाली निजी गतिविधि नहीं था, वह धीरे–धीरे विकसित होती क्षेत्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था से जुड़ता गया।

व्यापारी वर्ग, श्रेष्ठि–गृहपति और बदलती सामाजिक संरचना

महाजनपदकालीन व्यापार के विस्तार ने केवल वस्तुओं के प्रवाह को नहीं बढ़ाया, बल्कि संपत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के नए स्रोत भी उत्पन्न किए। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में सेट्ठि, गहपति, सेट्ठि–गहपति, वाणिज तथा व्यापारिक समूहों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। 'गृहपति' शब्द मूलतः संपन्न गृहस्वामी और उत्पादन–संसाधनों पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हो सकता था, जबकि 'श्रेष्ठि' क्रमशः व्यापार, ऋण और नगरीय संपदा से संबंधित समृद्ध व्यक्तियों के लिए प्रतिष्ठित पद बनता दिखाई देता है। रोमिला थापर ने इस परिवर्तन को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है कि व्यावसायिक अर्थव्यवस्था ने सामाजिक प्रतिष्ठा को केवल पूर्ववर्ती वंशीय स्थिति से निर्धारित होने से आंशिक रूप से अलग करना प्रारम्भ किया।[14] उमा चक्रवर्ती ने प्रारम्भिक बौद्ध समाज का अध्ययन करते हुए समृद्ध गृहपतियों और व्यापारियों के बढ़ते प्रभाव को नगरीकरण तथा नई सामाजिक संरचनाओं से जोड़ा है।[15] यह परिवर्तन महाजनपदों के इतिहास में इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि बड़ी क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था को ऐसे समूहों की आवश्यकता थी जो उत्पादन और बाजार के बीच वस्तुओं का संचलन कर सकें, ऋण उपलब्ध करा सकें तथा दूरस्थ क्षेत्रों के साथ आर्थिक संपर्क बनाए रखें। व्यापारियों और शिल्पकारों के निगम अथवा श्रेणीगत संगठन के प्रारम्भिक संकेत भी इस दिशा में आर्थिक विशेषीकरण को दर्शाते हैं। हालांकि बाद के काल की सुव्यवस्थित श्रेणियों को सीधे छठी शताब्दी ईसा–पूर्व पर आरोपित करना उचित नहीं है, किंतु सामूहिक व्यावसायिक पहचान का विकास स्पष्ट था। नगरों में संपन्न व्यापारियों की उपस्थिति से धार्मिक दान और नई श्रमण

---

[13] कोसाम्बी, डी. डी. (2006). "एंशिएंट कोशल एंड मगध." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 39–41.

[14] थापर, रोमिला. (1990). फ्रॉम लिनिएज टू स्टेट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 105–113.

[15] चक्रवर्ती, उमा. (1987). द सोशल डाइमेंशन्स ऑफ अर्ली बुद्धिज्म. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 63–66.

परंपराओं को भी संरक्षण मिला। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यापार ने केवल राज्य के लिए राजस्व नहीं उत्पन्न किया, उसने ऐसे सामाजिक समूहों को जन्म दिया जिनके हित राजनीतिक स्थिरता, मार्गों की सुरक्षा, बाजारों की निरंतरता और विधिक व्यवस्था से जुड़े थे। इस प्रकार विस्तृत राज्य और व्यापारी अर्थव्यवस्था के हित अनेक स्तरों पर एक–दूसरे के पूरक बन सकते थे।

मुद्रा, आहत सिक्के और विनिमय की बढ़ती जटिलता

महाजनपदकालीन आर्थिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण संकेत धातु मुद्रा का अधिक नियमित प्रयोग है। भारतीय उपमहाद्वीप के प्रारम्भिक सिक्कों में चाँदी और ताँबे के आहत सिक्के विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सिक्कों पर बाद के राजवंशीय सिक्कों की तरह राजा का नाम अथवा चित्र नहीं होता था, विभिन्न प्रतीकों को धातु के टुकड़ों पर अलग–अलग पंचों से अंकित किया जाता था। उनकी आरम्भिक तिथि को लेकर विद्वानों में मतभेद है, किंतु प्रथम सहस्राब्दी ईसा–पूर्व के मध्य से उनका उपयोग बढ़ती व्यापारिक और नगरीय अर्थव्यवस्था के साथ दिखाई देता है। मुद्रा के उदय को यह मानकर नहीं समझना चाहिए कि उसके पहले वस्तुओं का कोई विकसित विनिमय नहीं था। भारित धातु, वस्तु–विनिमय, ऋण और अन्य माध्यम पहले से प्रयुक्त रहे होंगे। फिर भी आहत सिक्कों ने मूल्य को तुलनात्मक रूप से मानकीकृत रूप में व्यक्त करने और ऐसे लेन–देन को सुविधाजनक बनाने में सहायता की जिनमें तत्काल प्रत्यक्ष वस्तु–विनिमय संभव नहीं था।[16] रोमिला थापर नगरीकरण की प्रक्रिया में मुद्रा, व्यापार और व्यापारी गतिविधियों को सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण घटकों में रखती हैं।[17] सिक्कों के भंडार और विभिन्न स्थलों से प्राप्त उदाहरण यह संकेत देते हैं कि कुछ क्षेत्रों में आर्थिक लेन–देन स्थानीय सीमाओं से बाहर विस्तृत हो चुका था। मुद्रा का राज्य–निर्माण से भी संभावित संबंध था, क्योंकि करों, सैनिकों या अधिकारियों के भुगतान और बाजार से सामग्री की खरीद जैसे कार्यों में धातु मुद्रा उपयोगी हो सकती थी, हालांकि महाजनपदकालीन अर्थव्यवस्था को पूर्णतः मुद्रीकृत मानना अत्यधिक सरलीकरण होगा। अधिकांश उत्पादन कृषि पर आधारित था और कर वस्तु के रूप में भी लिया जा सकता था। इसलिए मुद्रा को महाजनपदों की अर्थव्यवस्था का 'कारण' नहीं बल्कि बढ़ते बाजार, व्यापारिक विशेषीकरण और आर्थिक विनिमय की जटिलता का एक महत्वपूर्ण संकेतक समझना अधिक उचित है।

शिल्प–विशेषीकरण और नगरीय उत्पादन

नगरीकरण के साथ उत्पादन की संरचना में ऐसा परिवर्तन दिखाई देता है जिसमें कुछ शिल्प सामान्य घरेलू उत्पादन की सीमा से आगे बढ़कर अधिक विशेषीकृत स्वरूप ग्रहण करने लगे। लौहकार, स्वर्णकार, बढ़ई, मृद्भाण्ड निर्माता, वस्त्र–निर्माता, हाथीदाँत कारीगर, मनका–निर्माता

[16] गुप्ता, पी. एल. (1969). कॉइन्स. नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पृ. 17–20.
[17] थापर, रोमिला. (1990). फ्रॉम लिनिएज टू स्टेट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 107–114.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

और चमड़ा–कर्म से जुड़े लोग बढ़ते बाजारों की माँग को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण हुए। नगरों में बड़ी आबादी और संपन्न उपभोक्ताओं की उपस्थिति ने साधारण उपयोग की वस्तुओं के साथ उच्च गुणवत्ता और विलासिता की वस्तुओं के लिए भी बाजार प्रदान किया। उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड की उत्कृष्ट सतह, विविध प्रकार के मनकों, धातु वस्तुओं और हाथीदाँत शिल्प की उपस्थिति तकनीकी तथा शिल्पगत दक्षता की ओर संकेत करती है। ए. घोष ने प्रारम्भिक ऐतिहासिक नगर की अर्थव्यवस्था में शिल्प, व्यापार और राजनीतिक प्राधिकार के पारस्परिक संबंध पर विशेष बल दिया है।[18] विभा त्रिपाठी ने प्रथम सहस्राब्दी ईसा–पूर्व में धातु तथा अन्य अग्नि–आधारित तकनीकों के विकास का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि तकनीकी परिवर्तन केवल कृषि तक सीमित नहीं था, धातुकर्म, मृद्भाण्ड, काँच और अन्य शिल्पों में भी बढ़ती दक्षता दिखाई देती है।[19] शिल्प–विशेषीकरण का महाजनपदों के उदय से संबंध इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह श्रम–विभाजन और गैर–कृषक आबादी की वृद्धि का संकेत देता है। ऐसे शिल्पकारों का निर्वाह अंततः कृषि–अधिशेष और बाजार पर निर्भर था। इसके बदले उनके उत्पाद ग्रामीण और राजकीय अर्थव्यवस्था दोनों के लिए आवश्यक थे। लोहे के उपकरण खेती और निर्माण में, हथियार सैनिक गतिविधियों में तथा उच्च गुणवत्ता की वस्तुएँ व्यापार में उपयोगी थीं। इस तरह शिल्प उत्पादन ने ग्रामीण अधिशेष को बाजार से और बाजार को व्यापक राजनीतिक अर्थव्यवस्था से जोड़ा। वस्तुओं की बढ़ती विविधता ने व्यापार के लिए नए अवसर उत्पन्न किए और शहरी केंद्रों को केवल उपभोग स्थल के बजाय उत्पादन के सक्रिय केंद्र भी बनाया।

लौह प्रौद्योगिकी, कृषि उत्पादन और भूमि उपयोग

महाजनपदों के उदय की आर्थिक व्याख्या में लौह तकनीक को लंबे समय से महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रथम सहस्राब्दी ईसा–पूर्व के प्रारम्भिक सदियों से उत्तर भारत के विभिन्न पुरास्थलों पर लोहे से निर्मित उपकरण और हथियार मिलने लगते हैं और छठी शताब्दी ईसा–पूर्व तक उनका उपयोग अधिक व्यापक दिखाई देता है। लोहे की कुल्हाड़ी, कुदाल, हँसिया, फाल और अन्य उपकरणों ने कुछ प्रकार के कृषि तथा निर्माण कार्यों को अधिक प्रभावी बनाया होगा। आर. एस. शर्मा ने विशेष रूप से मध्य गंगा घाटी में लौह उपकरणों को कृषि–भूमि के विस्तार, उत्पादन–वृद्धि और महाजनपदों के लिए आवश्यक अधिशेष से जोड़ा है।[20] एम. डी. एन. साही ने उत्तरी भारत में प्रारम्भिक लौह युग के कृषि उत्पादन की समीक्षा

---

18 घोष, ए. (2006). "द सिटी इन अर्ली हिस्टोरिकल इंडिया." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 100–103.

19 त्रिपाठी, विभा. (2006). "इम्पैक्ट ऑफ मेटल टेक्नोलॉजी ऑन इकोनॉमिक डेवलपमेंट." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 198–209.

20 शर्मा, आर. एस. (2006). "मटेरियल बैकग्राउंड ऑफ द जेनेसिस ऑफ द स्टेट एंड कॉम्प्लेक्स सोसायटी इन द मिडिल गैंगेटिक प्लेन्स." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 159–168.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

करते हुए यह दिखाया कि लौह उपकरणों की भूमिका को पर्यावरण, फसल–पद्धति और पहले से उपलब्ध कृषि तकनीकों के साथ समझना आवश्यक है।[21] इसका अर्थ यह है कि लोहे ने कृषि का आविष्कार नहीं किया, खेती पहले से विद्यमान थी। उसके महत्व को कृषि की दक्षता और कुछ नए भू–भागों के उपयोग की संभावना बढ़ाने में देखना अधिक उचित है। इसी प्रकार घने गंगा वन को केवल लोहे की कुल्हाड़ियों से बड़े पैमाने पर अचानक साफ कर दिए जाने की पुरानी धारणा पर भी प्रश्न उठाए गए हैं। नदी किनारे प्राकृतिक रूप से खुले क्षेत्र, आग, पूर्ववर्ती उपकरण तथा क्रमिक मानव हस्तक्षेप भी वनस्पति परिवर्तन में भूमिका निभाते थे। अतः लौह प्रौद्योगिकी का योगदान क्रमिक और क्षेत्रानुसार भिन्न था। फिर भी जब लोहे की अधिक मजबूत धार वाले उपकरण व्यापक ग्रामीण उत्पादन में उपलब्ध होने लगे, तो वे भूमि की तैयारी, कटाई, लकड़ी के काम और शिल्प में उत्पादक क्षमता बढ़ा सकते थे। बढ़ा हुआ उत्पादन बड़ी जनसंख्या, बाजार और गैर–कृषक समूहों के निर्वाह में सहायक था। इसलिए लौह तकनीक का महत्त्व अलग–थलग तकनीकी नवाचार में नहीं, बल्कि उसके व्यापक उत्पादन व्यवस्था में सम्मिलित होने में था।

लौह–निर्धारणवाद पर इतिहासलेखन की बहस

लौह प्रौद्योगिकी और महाजनपदों के उदय के संबंध में इतिहासलेखन में सबसे महत्वपूर्ण बहस इस प्रश्न पर केंद्रित है कि क्या लोहे ने स्वयं सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन उत्पन्न किया था। डी. डी. कोसाम्बी और बाद में आर. एस. शर्मा की व्याख्याओं में लोहे, कृषि विस्तार, अधिशेष और बड़े राज्यों के उदय के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित किया गया। इस दृष्टिकोण के अनुसार मजबूत लौह उपकरणों ने गंगा घाटी की कृषि क्षमता का अधिक व्यापक उपयोग संभव बनाया और परिणामस्वरूप कर योग्य अधिशेष बढ़ा।[22] किंतु पुरातत्त्वविदों और इतिहासकारों के एक अन्य समूह ने इस संबंध की सीधी व्याख्या को चुनौती दी। दिलीप के. चक्रवर्ती ने बताया कि भारत में लोहे का प्रारम्भ कई क्षेत्रों में नगरीकरण और महाजनपदों से पहले हो चुका था, इसलिए यदि लोहे का होना ही पर्याप्त कारण होता तो शहरी और राज्य संरचनाएँ उससे तुरंत विकसित हो जानी चाहिए थीं।[23] मक्कन लाल ने गंगा मैदान के पुरातात्त्विक साक्ष्यों का विश्लेषण करते हुए बड़े पैमाने की वन–सफाई को केवल लौह कुल्हाड़ियों से जोड़ने पर भी आपत्ति की और इस प्रक्रिया में बस्ती–विस्तार तथा अनेक अन्य

---

21 साही, एम. डी. एन. (2006). "एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन ड्यूरिंग द अर्ली आयरन एज इन नॉर्दर्न इंडिया." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 195–197.

22 कोसाम्बी, डी. डी. (1956). एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री. पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई, पृ. 138–140.

23 चक्रवर्ती, दिलीप के. (2006). "बिगिनिंग ऑफ आयरन एंड सोशल चेंज इन इंडिया." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 118–120.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

पर्यावरणीय और सामाजिक तत्वों को महत्वपूर्ण माना।[24] निहाररंजन राय ने तकनीकी नवाचार और सामाजिक परिवर्तन के बीच यांत्रिक कारण–परिणाम संबंध स्थापित करने के बजाय सामाजिक आवश्यकता और तकनीक के उपयोग की परिस्थितियों पर बल दिया।[25] इस बहस का महत्त्व इस शोध–पत्र के लिए अत्यधिक है, क्योंकि इससे एक अधिक संतुलित व्याख्या सामने आती है। लोहे को नगरीकरण या राज्य–निर्माण से असंबद्ध मानना उतना ही अनुचित है जितना उसे अकेला निर्णायक कारण मानना। तकनीक तभी ऐतिहासिक प्रभाव उत्पन्न करती है जब श्रम, उत्पादन, बाजार, संसाधनों की माँग और राजनीतिक संगठन उसे व्यापक उपयोग में लाएँ। अतः महाजनपदों के उदय में लौह तकनीक को एक सक्षमकारी कारक के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है – उसने मौजूद आर्थिक प्रक्रियाओं की क्षमता बढ़ाई, पर उन्हें अकेले जन्म नहीं दिया।

व्यापार, नगर और राज्य के संसाधन–संग्रह का संबंध

महाजनपदों जैसी बड़ी राजनीतिक इकाइयों को स्थायी बनाए रखने के लिए नियमित संसाधन–संग्रह आवश्यक था। नगरीकरण और व्यापार ने इस प्रक्रिया को एक नया आयाम दिया, क्योंकि राज्य की आर्थिक आधारभूमि अब केवल ग्रामीण उत्पादन तक सीमित नहीं रही। कृषि अधिशेष निश्चित रूप से सबसे महत्वपूर्ण संसाधन था, लेकिन नगरों में केंद्रित शिल्प, बाजार और व्यापारिक गतिविधियाँ शुल्क तथा विविध प्रकार की आय के अतिरिक्त स्रोत प्रदान कर सकती थीं। किसी बड़े नगर में वस्तुओं का नियमित आगमन स्वयं राजनीतिक सत्ता के लिए अवसर था – मार्गों, बाजारों, नौका–घाटों और व्यापारिक स्थानों पर नियंत्रण से वस्तुओं और व्यापारियों की गतिविधियों को संगठित किया जा सकता था। जॉर्ज एर्डोसी ने प्रारम्भिक गंगा घाटी में केंद्रीकरण, उत्पादन और व्यापार के बीच संबंध स्थापित करते हुए यह तर्क दिया कि प्रतिस्पर्धी राजनीतिक वातावरण में राज्यों को अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए उत्पादन तथा व्यापार को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता थी।[26] शहरी केंद्र इस राजस्व व्यवस्था के लिए उपयुक्त स्थल थे क्योंकि यहाँ अधिकारियों, व्यापारियों, शिल्पकारों और संचित वस्तुओं का केंद्रीकरण होता था। ग्रामीण क्षेत्र में फैले उत्पादन को एक केंद्रीय बाजार अथवा प्रशासनिक स्थल तक लाने से राज्य के लिए उसका आकलन और नियंत्रण अपेक्षाकृत सरल हो सकता था। इसके साथ ही व्यापारियों को राजनीतिक स्थिरता, रास्तों

---

24 लाल, मक्कन. (2006). "आयरन टूल्स, फॉरेस्ट क्लीयरेंस एंड अर्बनाइजेशन इन द गैंगेटिक प्लेन्स." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 137–139.

25 राय, निहाररंजन. (2006). "टेक्नोलॉजी एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडियन हिस्ट्रीः ए नोट पोजिंग ए थ्योरिटिकल क्वेश्चन." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 131–136.

26 एर्डोसी, जॉर्ज. (1988). अर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टोरिक इंडिया. बी.ए.आर. इंटरनेशनल सीरीज 430, ऑक्सफोर्ड, पृ. 131–132.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

की सुरक्षा और अनुबंधों के लिए सामाजिक–वैधानिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। इस तरह राज्य और व्यापार का संबंध केवल शोषण अथवा कर–वसूली तक सीमित नहीं था, दोनों की स्थिरता के कुछ साझा हित भी थे। राज्य व्यापार से संसाधन प्राप्त करता था और व्यापारी विस्तृत राजनीतिक इकाई द्वारा प्रदान की गई अपेक्षाकृत स्थिर संचार–व्यवस्था से लाभान्वित हो सकता था। यही आर्थिक परस्परता छोटे स्थानीय राजनीतिक संगठनों की तुलना में बड़े भू–क्षेत्रीय महाजनपदों के लिए अतिरिक्त शक्ति का आधार बनी।

नगरीकरण, व्यापार और तकनीक का परस्पर सुदृढ़ीकरण

नगरीकरण, व्यापार और लौह प्रौद्योगिकी को तीन स्वतंत्र कारकों के रूप में सूचीबद्ध करना महाजनपदों की उत्पत्ति को पूरी तरह नहीं समझाता, क्योंकि इनका वास्तविक ऐतिहासिक महत्व उनके परस्पर संबंध में निहित था। लौह और अन्य तकनीकी उपकरण कृषि तथा शिल्प में उत्पादक क्षमता बढ़ा सकते थे, अधिक उत्पादन से बाजार में विनिमय योग्य अधिशेष उपलब्ध होता था, व्यापार उस अधिशेष को स्थानीय सीमा से बाहर ले जाकर विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों को जोड़ता था और व्यापार तथा शिल्प की बढ़ती गतिविधियाँ ऐसे नगरों को पोषित करती थीं जहाँ गैर–कृषक आबादी, अधिकारी, व्यापारी और विशेषज्ञ कारीगर एकत्र होते थे। नगरों की बढ़ती जनसंख्या पुनः खाद्यान्न, उपकरण और विलास–वस्तुओं की मांग उत्पन्न करती थी, जिससे ग्रामीण उत्पादन और शिल्प को अतिरिक्त प्रोत्साहन मिलता था। भैरबी प्रसाद साहू ने लौह और सामाजिक परिवर्तन की बहस का मूल्यांकन करते हुए इस बात पर बल दिया है कि तकनीकी परिवर्तन को राज्य, सामाजिक विभेदीकरण और क्षेत्रीय आर्थिक प्रक्रियाओं से अलग करके समझना उचित नहीं है।[27] दिलीप के. चक्रवर्ती और नयनजोत लाहिरी ने भी भारतीय लौह युग के विभिन्न क्षेत्रीय अनुभवों का अध्ययन करके दिखाया कि तकनीक का प्रभाव पूरे उपमहाद्वीप में समान नहीं था।[28]

इसका अर्थ है कि महाजनपद वहाँ विकसित हुए जहाँ आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का विशेष संयोजन मौजूद था, केवल लौह वस्तुओं की पुरातात्त्विक उपस्थिति पर्याप्त नहीं थी। इसी प्रकार कोई नगर केवल व्यापार की वजह से नहीं बनता था, उसे खाद्यान्न–आपूर्ति, श्रम, राजनीतिक संरक्षण और शिल्प की आवश्यकता थी। इसलिए महाजनपदों के उदय को एक 'फीडबैक प्रक्रिया' के रूप में समझा जा सकता है जिसमें उत्पादन ने बाजार को, बाजार ने नगरों को और नगरों तथा राज्य की माँग ने पुनः उत्पादन तथा व्यापार को सुदृढ़ किया। इसी चक्र ने राजनीतिक केंद्रीकरण के लिए आवश्यक आर्थिक आधार को क्रमशः व्यापक बनाया।

---

[27] साहू, भैरबी प्रसाद. (2006). "इंट्रोडक्शन." आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 31–34.

[28] चक्रवर्ती, दिलीप के. एवं लाहिरी, नयनजोत. (2006). "द आयरन एज इन इंडियाः द बिगिनिंग एंड कॉन्सीक्वेंसेज." भैरबी प्रसाद साहू (सम्पा.), आयरन एंड सोशल चेंज इन अर्ली इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 169–178.

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

निष्कर्ष

महाजनपदों का उदय प्राचीन भारत में राजनीतिक संगठन के विस्तार से कहीं अधिक व्यापक परिवर्तन का परिणाम था। ईसा–पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के मध्य कृषि उत्पादन, बस्ती–पद्धति, शिल्प, व्यापारिक संपर्क और तकनीक में हुए परिवर्तन ने ऐसी भौतिक परिस्थितियाँ तैयार कीं जिनमें बड़े भू–क्षेत्रीय राज्यों का निर्माण और स्थायित्व संभव हुआ। द्वितीय नगरीकरण के अंतर्गत विकसित राजगृह, वैशाली, कौशाम्बी, वाराणसी, श्रावस्ती और अन्य नगर ग्रामीण अर्थव्यवस्था से पृथक द्वीप नहीं थे, वे खाद्यान्न, कच्चे माल और श्रम के लिए अपने ग्रामीण परिक्षेत्र पर निर्भर थे तथा बदले में बाजार, शिल्प और प्रशासनिक केंद्र के रूप में कार्य करते थे। व्यापारिक मार्गों के विस्तार ने अलग–अलग उत्पादन क्षेत्रों को जोड़कर आर्थिक विनिमय को अधिक जटिल बनाया और व्यापारी तथा संपन्न गृहपति जैसे नए प्रभावशाली समूहों को विकसित किया। आहत मुद्रा का प्रसार इस बढ़ती विनिमय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण संकेत था। लौह तकनीक ने कृषि, निर्माण, शिल्प और अन्य उत्पादन गतिविधियों में सहायक भूमिका निभाई, किंतु उसके प्रभाव को अन्य आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से अलग नहीं किया जा सकता। इस अध्ययन का केंद्रीय निष्कर्ष यह है कि महाजनपदों का उदय नगरीकरण, व्यापार और लौह प्रौद्योगिकी में से किसी एक की देन नहीं था, इन तीनों का कृषि–अधिशेष, श्रम–विभाजन, बस्ती–विस्तार और संसाधनों के राजनीतिक केंद्रीकरण के साथ पारस्परिक संबंध ही निर्णायक था। उत्पादन में वृद्धि ने व्यापार और नगरों को पोषित किया, नगरों ने बाजार तथा प्रशासन के केंद्र उपलब्ध कराए, व्यापार ने आर्थिक क्षेत्र को विस्तृत किया और तकनीकी सुधारों ने उत्पादन तथा शिल्प की क्षमता को बढ़ाया। इसी परस्पर सुदृढ़ीकरण से ऐसी जटिल क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था विकसित हुई जो छोटे जनपदों से बड़े महाजनपदों में संक्रमण की आवश्यक भौतिक आधारभूमि बनी।